श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की श्रेष्ठ रचना

संवेगरंगशाला आराधना

(संक्षिप्त परिचय)

ले० पं० लालचन्द्र भगवान् गान्धी, बड़ौदा

[सुविहित मार्ग प्रकाशक आचार्य जिनेश्वरसूरिजी के पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी हुए। उनका विस्तृत परिचय तो प्राप्त नहीं होता। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में इतना ही लिखा है कि "जिनेश्वरसूरि ने जिनचन्द्र और अभयदेव को योग्य जानकर सूरिपद से विभूषित किया और वे श्रमण धर्म की विशिष्ट साधना करते हुए क्रमशः युगप्रधान पद पर आसीन हुए।

आचार्य जिनेश्वरसूरि के पश्चात् सूरिश्रेष्ठ जिनचन्द्रसूरि हुए जिनके अष्टादश नाममाला का पाठ और अर्थ साङ्गोपाङ्ग कण्ठाग्र था, सब शास्त्रों के पारंगत जिनचन्द्रसूरि ने अठारह हजार श्लोक परिमित संवेगरंगशाला की सं० ११२५ में रचना की। यह ग्रन्थ भव्य जीवों के लिए मोक्ष रूपी महल के सोपान सदृश है।

जिनचन्द्रसूरि ने जावालिपुर में जाकर श्रावकों की सभा में "चीवंदण मावस्सय" इत्यादि गाथाओं की व्याख्या करते हुए जो सिद्धान्त संवाद कहे थे उनको उन्हीं के शिष्य ने लिखकर ३०० श्लोक परिमित दिनचर्या नामक ग्रन्थ तैयार कर दिया जो श्रावक समाज के लिए बहुत उपकारी सिद्ध हुआ। वे जिनचन्द्रसूरि अपने काल में जिन-धर्म का यथार्थ प्रकाश फैलाकर देवगति को प्राप्त हुए।"

आपके रचित पंच परमेष्ठी नमस्कार फल कुलक, क्षपक-शिक्षा प्रकरण, जीव-विभक्ति, आराधना, पार्श्व स्तोत्र आदि भी प्राप्त हैं।

संवेगरंगशाला अपने विषय का अत्यन्त महत्वपूर्ण विशद ग्रन्थ है। जिसका संक्षिप्त परिचय हमारे अनुरोध से जैन साहित्य के विशिष्ट विद्वान पं० लालचन्द्र भ० गांधी ने लिख भेजा है। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होना अति आवश्यक है।— सं०]

श्रीजैनशासन के प्रभावक, समर्थ धर्मोपदेशक, ज्योतिर्धर गीतार्थ जैनाचार्यों में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का संस्मरणीय स्थान है। मोक्षमार्ग के आराधक, मुमुक्षु-जनों के परम माननीय, सत्कर्त्तव्य-परायण जिस आचार्य ने आज से नौ सौ वर्ष पहिले-विक्रम संवत् ११२५ में प्राकृत भाषा में दस हजार, ५३ गाथा प्रमाण संवेगमार्ग-प्रेरक संवेगरंगशाला आराधना की श्रेष्ठ रचना की थी, जो ९००-नौ सौ वर्षों के पीछे-विक्रमसंवत् २०२५ में पूर्णरूप से प्रकाश में आई है, परम आनन्द का विषय है।

बड़ौदा राज्यकी प्रेरणा से सुयोग्य विद्वान चीमनलाल डा० दलाल एम०ए० ईस्वी सन् १९१६ के अन्तिम चार मास वहीं ठहर कर जेसलमेर किल्ले के प्राचीन ग्रन्थ-भण्डार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अवलोकन बड़ी मुश्किल से कर सके। वहाँ की रिपोर्ट कच्ची नोंध व्यवस्थित कर प्रकाशित कराने के पहिले ही वे ईस्वी सन् १९१७ अक्टोबर मास में स्वर्गस्थ हुए।

आज से ५० वर्ष पहिले-ईस्वी सन् १९२० अक्टोबर में बड़ौदा-राजकीय सेन्ट्रल लाइब्रेरी (संस्कृत पुस्तकालय) में 'जैन पंडित' उपनामसे हमारी नियुक्ति हुई, और विधि-वशात् सद्‌गत चीο डाο दलाल एमο एο के अकाल स्वर्गवास से अप्रकाशित वह कच्ची नोंध-आधारित 'जेसलमेर दुर्ग-जैन ग्रन्थभण्डार-सूचीपत्र' सम्पादित-प्रकाशित कराने का हमारा योग आया। दो वर्षों के बाद ईस्वी सन् १९२३ में उस संस्था द्वारा गायकवाड ओरियन्टल सिरीज नंο २१ में यह ग्रन्थ बहुत परिश्रम से बम्बई निο साο द्वारा प्रकाशित हुआ है। बहुत ग्रन्थ गवेषणा के बाद उसमें प्रस्तावना और विषयवार अप्रसिद्ध ग्रन्थ, ग्रन्थकृत-परिचय परिशिष्ट आदि संस्कृत भाषा में मैंने तैयार किया था। उसमें जेसलमेर दुर्ग के बड़े भण्डार में नंο १८३ में रही हुई उपर्युक्त संवेगरंगशाला (२८३ × २३ साइज) ३४७ पत्रवाली ताड़पत्रीय पोथी का सूचन है। वहाँ अन्तिम उल्लेख इस प्रकार है :—

"इति **श्रीजिनचन्द्रसूरिकृता** तद्विनेय श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्यसमभ्यर्थित-गुणचन्द्रगणि प्रतिसंस्कृ(संस्कृ)ता जिनवल्लभगणिना संशोधिता **संवेगरंगशाला**भिधानाराधना समाप्ता।

संवत् १२०७ वर्षे ज्येष्ठसुदि १० गुरौ अद्येह श्रीवटपद्रके दंडο श्रीवोसरि प्रतिपत्तौ **संवेगरंगशाला** पुस्तकं लिखितमिति।"

—स्वο दलाल ने इसकी पीछे की २७ पद्योंवाली लिखानेवाले की प्रशस्ति का सूचन किया है, अवकाशाभाव से वहाँ लिखी नहीं थी।

जेο भांο सूचीपत्र में 'अप्रसिद्ध ग्रन्थ-ग्रन्थकृत्परिचय' कराने के समय मैंने 'जैनोपदेशग्रन्थाः' इस विभाग में पृο ३८-३९ में 'संवेगरंगशाला' के सम्बन्ध में अन्वेषण पूर्वक संक्षिप्त परिचय सूचित किया था। उसकी रचना संο११२५ में हुई थी। लिο प्रति संο १२०७ की थी। रचना का आधार नीचे टिप्पणी में मैंने मूलग्रन्थ की अर्वाचीन सेο लाο की हο लिο प्रति से अवतरण द्वारा दर्शाया था—

विक्कमनिवकालाओ समइक्कंतेसु वरिसाण।
एक्कारससु सएसु पणवीस समहिएसु॥
निप्पत्ति संपत्ता एसाराहण त्ति फुडपायडपयत्था।"

भावार्थ—विक्रमनृपकाल से ११२५ वर्ष बीतने के बाद स्फुट प्रगट पदार्थवाली यह आराधना सिद्धि को प्राप्त हुई।

इसके पीछे मैंने बृहट्टिप्पणिका का भी संवाद दर्शाया था—'संवेगरङ्गशाला ११२५ वर्षे **नवाङ्गाभयदेववृद्ध भ्रातृजिनचन्द्रीया** १००५३"

मैंने वहाँ संस्कृत में संक्षेप में परिचय कराया था कि 'आराधनेत्यपराह्वेयं **नवाङ्गवृत्तिकाराभयदेवसूरेरभ्यर्थनया** विरचिता। विरचयिता चायं जिनेश्वरसूरेर्मुख्यः शिष्योऽभयदेवसूरेश्च वृद्धसतीर्थ्यः।"

अभयदेवसूरि पर टिप्पणी में मैंने उसी संवेगरंगशाला की सेο लाο की हο लिο प्रति से पाठ का अवतरण वहाँ दर्शाया था —

"सिरिअभयदेवसूरि त्ति पत्तकित्ती परं भवणे॥[१००४१]
जेण कुबोह महारिउ विद्दममाणस्स नरवइस्सेव।
सुयधम्मस्स दढत्तं, निव्वत्तिय**मंगवित्तीहिं**॥[१००४२]
तस्सब्भत्थणवसओ **सिरिजिणचंदमुनिवरेण** इमाण।
मऊगारेण व उच्चिणिऊण वरवयणकुसुमाइं॥[१००४३]
मूलसुय-काणणाओ, गुंथिता नियय मइगुणेण दढं।
विविहत्थ-सोरभभरा, निम्मवियाराहणामाला॥[१००४४]'

भावार्थः—भवन में श्रेष्ठ कीर्ति पानेवाले श्री **अभयदेवसूरि** हुए। जिसने कुबोध रूप महारिपु द्वारा विनष्ट किये जाते नरपति जैसे **श्रुतधर्म का दृढ़त्व अंगों की वृत्तियों द्वारा किया। उनकी अभ्यर्थना के वश से**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जिनचन्द्र मुनिवर ने मालाकार की तरह, **मूलश्रुत** रूप उद्यान से श्रेष्ठ वचन-कुसुमों का उच्चुंटन कर, अपने मतिगुण से दृढ़ गुंथन करके विविध अर्थ-सौरभ-भरपूर यह **आराधनामाला रची है।**

इसके पीछे मैंने वहाँ सूचन किया है कि "पाश्चात्यैरनेकैर्ग्रन्थकारैरस्याः कृतेः संस्मरणमकारि।" इसका भावार्थ यह है कि–इस संवेगरंगशाला कृति का संस्मरण, पीछे होनेवाले अनेक ग्रन्थकारों ने किया है। इसका समर्थन करने के लिए मैंने वहां (१) गुणचन्द्रगणि का महावीरचरित, (२) जिनदत्तसूरि का गणधरसार्धशतक, (३) जिनपतिसूरि का पंचलिंगीविवरण (४) सुमतिगणि की गणधरसार्धशतक वृत्ति, (५) संघपुर मन्दिर–शिलालेख, (६) चन्द्रतिलक उपाध्याय का अभयकुमार चरित तथा (७) भुवनहित उपाध्याय के राजगृह-शिलालेख में से-अवतरण टिप्पणी में दर्शाये थे, वे इस प्रकार हैं —

श्रीगुणचन्द्र गणिने विक्रम संवत् ११३९ में रचित प्राकृत महावीरचरित में प्रशंसा की है कि—

संवेगरंगसाला न केवलं कव्वविरयणा जेण।
भव्वजणविम्हयकरी विहिया संजम-पवित्ती वि ॥"

भावार्थ:— जिसने (श्रीजिनचन्द्रसूरि ने) सिर्फ संवेगरंगशाला काव्य-रचना ही नहीं की, भव्यजनों को विस्मय करानेवाली संयमप्रवृत्ति भी की थी।

[२]

श्रीजिनदत्तसूरिजी ने विक्रम की बारहवीं शताब्दी-उत्तरार्ध में रचित प्रा०गणधरसार्धशतक में प्रशंसा की है कि—

संवेगरंगसाला विसालसालोवमा कया जेण।
रागाइवेरिभयभीय - भव्वजणरक्खण-निमित्तं ॥"

भावार्थ:—जिसने (श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने) रागादि वैरियों से भयभीत भव्यजनों के रक्षण-निमित्त विशाल किला जैसी संवेगरंगशाला की।

[३]

श्रीजिनपतिसूरिजी द्वारा विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में रचित पंचलिंगी-विवरण सं० में प्रशंसा की है कि—

"नर्तयितुं संवेगं पुनर्नृणां लुप्तनृत्यमिव कलिना।
संवेगरङ्गशाला येन विशाला व्यरचि रुचिरा ॥"

भावार्थ:—जिसने (श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने), कलिकाल से जिसका नृत्य लुप्त हो गया था, वैसे मानो मनुष्यों के संवेग को नृत्य कराने के लिए विशाल मनोहर संवेगरंगशाला रची।

[४]

विक्रम संवत् १२९५ में सुमतिगणि ने गणधरसार्धशतक की सं० बृहद्वृत्ति में उल्लेख किया है कि--

"पश्चाज्जिनचन्द्रसूरिवर आसीद् यस्याष्टादशनाममाला सूत्रतोऽर्थतश्च मनस्यासन् सर्वशास्त्रविदः। येनाष्टा(?) दशसहस्रप्रमाणा **संवेगरङ्गशाला** मोक्षप्रासादपदवी भव्यजन्तूनां कृता। येन जावालिपुरे द्(ग)तेन श्रावकाणामग्रे व्याख्यानं 'चोवंदणमावस्सय' इत्यादि गाथायाः कुर्वता सिद्धान्तसंवादाः कथितास्ते सर्वे सुशिष्येण लिखिताः शतत्रय-प्रमाणो दिनचर्याग्रन्थः श्राद्धानामुपकारी जातः।"

[—यह पाठ मैंने बड़ौदा-जैनज्ञानमन्दिर-स्थित श्रीहंसविजयजी मुनिराज के संग्रह की अर्वाचीन ह० लि० प्रति से उद्धृत कर दर्शाया था]

भावार्थ:—पीछे (श्रीजिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के अनन्तर) श्रीजिनचन्द्र सूरिवर हुए। सर्वशास्त्रविद् जिसके मन में १८ नाममालाएँ सूत्र से और अर्थ से उपस्थित थीं। जिसने दस हजार गाथा प्रमाण **संवेगरंगशाला** भव्यजीवों के लिए मोक्ष प्रासाद-पदवी की। जावालिपुर में गए हुए जिसने श्रावकों के आगे 'चोवंदणमावस्सय' इत्यादि गाथा का व्याख्यान करते हुए सिद्धान्त के संवाद कहे थे, उन सबको सुशिष्य ने लिख लिए, तीन सौ श्लोक-प्रमाण 'दिनचर्या' नामक ग्रन्थ श्रावकों के लिए उपकारी हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[५]

रिक्त संघपुर-जैन मन्दिर की भित्ति में लगे हुए प्रायः सं० १३२६ (?) के अपूर्ण शिलालेख की नकल स्व० बुद्धिसागरसूरिजी की प्रेरणा से 'बीजापुर-वृत्तान्त' के लिए मैंने ५४ वर्ष पहिले उद्धृत की थी, उसमें यह पद्य है—

"**संवेगरङ्गशाला** सुरभिः सुरविटपि-कुसुममालेव ।
शुचिसरसाऽमरसरिदिव यस्य कृतिर्जयति कीर्तिरिव ॥

भावार्थः—जिसकी (श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की) कृति संवेगरंगशाला सुगन्धि कल्पवृक्ष की कुसुममाला जैसी और पवित्र सरस गंगानदी जैसी, और उनकी कीर्ति जैसी जयवती है।

[६]

उनकी परम्परा के चन्द्रतिलक उपाध्याय ने वि० सं० १३१२ में रचे हुए सं० अभयकुमार चरित काव्य में दो पद्य हैं कि—

"तस्याभूतां शिष्यौ, तत्प्रथमः सूरिराज **जिनचन्द्रः**।
संवेगरङ्गशालां, व्यधित कथां यो रसविशालाम् ॥
बृहन्नमस्कारफलं, श्रोतृलोकसुधाप्रपाम् ।
चक्रे **क्षपकशिक्षां** च, यः संवेगविवृद्धये ॥"

भावार्थः—उनके (श्रीजिनेश्वरसूरिजी के) दो शिष्य हुए। उनमें प्रथम सूरिराज जिनचन्द्र हुए ; जिसने रस-विशाल श्रोता लोगों के लिये अमृत-परब जैसी संवेगरंगशाला कथा की, और जिसने **बृहन्नमस्कारफल** तथा संवेग की विवृद्धि के लिये **क्षपकशिक्षा** की थी।

राजगृह में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी का जो शिलालेख उपलब्ध है, उसमें उनके अनुयायी भुवनहित उपाध्याय ने संस्कृत प्रशस्ति में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की संवेगरंगशाला का संस्मरण इस प्रकार किया है—

"ततः श्री**जिनचन्द्राख्यो** बभूव मुनिपुंगवः ।
संवेगरङ्गशालां यश्चकार च बभार च ॥"

भावार्थः—उसके बाद (श्रीजिनेश्वरसूरिजी के पीछे) **श्रीजिनचन्द्र** नामके श्रेष्ठ सूरि हुए, जिसने **संवेगरंगशाला** की, और धारण-पोषण की।

—उत्तमोत्तम यह संवेगरंगशाला ग्रन्थ कई वर्षों के पहिले श्रीजिनदत्तसूरि-ज्ञानभंडार, सूरत से तीन हजार पद्य-प्रमाण अपूर्ण प्रकाशित हुआ था। दस हजार, तिरेपन गाथा प्रमाण परिपूर्ण ग्रन्थ आचार्यदेवविजयमनोहरसूरि शिष्याणु मुनि परम-तपस्वी **श्री हेमेन्द्रविजयजी** और **पं० बाबूभाई** सवचन्द के शुभ प्रयत्न से संशोधित संपादित होकर, विक्रम संवत् २०२५ में अणहिलपुर पत्तनवासी झवेरी कान्तिलाल मणिलाल द्वारा मोहमयी मुम्बापुरी से पत्राकार प्रकाशित हुआ है। मूल्य साढ़े बारह रुपया है। गत सप्ताह में ही संपादक मुनिराज ने कृपया उसकी १ प्रति हमें भेंट भेजी है।

इस ग्रन्थ के टाइटल के ऊपर तथा समाप्ति के पीछे कर्त्ता श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का विशेषण तपागच्छीय छपा है, घट नहीं सकता। 'तपागच्छ' नामकी प्रसिद्धि सं० १२८५ से श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी से है, और इस ग्रन्थ की रचना वि० संवत् ११२५ में अर्थात् उससे करीब डेढ़ सौ वर्ष पहिले हुई थी। और वहाँ गुजराती प्रस्तावना में इस ग्रन्थकार श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को समर्थ तार्किक महावादी श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी कृत संमतितर्क ग्रन्थ पर असाधारण टीका लिखनेवाले पू० आचार्यदेव श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज के वडील गुरुबन्धु सूचित किया, वह उचित नहीं है। इस संवेगरंगशाला की प्रान्त प्रशस्ति में स्पष्ट सूचन है कि **वे अंगों की वृत्ति रचनेवाले श्रीअभयदेव सूरिजी के वडील गुरुबन्धु थे**, उनकी अभ्यर्थना से इस ग्रन्थ की रचना सूचित की है।

अभयदेवसूरिजी ने अङ्गों (आगम) पर वृत्तियाँ विक्रम संवत् ११२० से ११२८ तक में रची थी, प्रसिद्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस संवेगरंगशाला के कर्त्ता ने अन्त में १००२६ गाथा से अपनी परम्परा का वंशवृक्ष सूचित किया है। उसमें चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के अनन्तर सुधर्मा स्वामी, जंबूस्वामी, प्रभवस्वामी, शय्यंभव स्वामी की परम्परारूप अपूर्व वंशवृक्ष की, वज्रस्वामी की शाखा में हुए **श्रीवर्धमानसूरिजी** का वर्णन १००३४,३५ गाथा में किया है। उनके दो शिष्य (१) जिनेश्वरसूरि और (२) बुद्धिसागरसूरि का परिचय १००३६ से १००३९ गाथाओं में कराया है—

"**तस्साहाए** निम्मलजसधवलो सिद्धिकामलोयाणं।
सविसेसवंदणिज्जो य, रायणा थो(थे) रप्पवग्गोव्व ॥

१००३४ ॥

कालेणं संभूओ, भयवं सिरिवद्धमाण मुणिवसभो।
निप्पडिम पसमलच्छी-विच्छड्डाखंड-भंडारो ॥ १००३५ ॥
ववहार-निच्छयनय व्व, दव्व-भावत्थय व्व धम्मस्स।
परमुन्नइजणगा तस्स, दोण्णि सीसा समुप्पण्णा ॥

॥ १००३६ ॥

पढमो सिरिसूरिजिणेसरो त्ति, सूरो व्व जम्मि उइयम्मि।
होत्था पहाऽवहारो, दूरंत-तेयसिस चक्कस्स ॥ १००३७ ॥
अज्ज वि य जस्स हरहास-हंसगोरं गुणाण पब्भारं।
सुमरंता भव्वा उव्वहंति रोमंचमंगेसु ॥ १००३८ ॥
बीओ पुण विरइय-निउण-पवर **वागरण**-पमुह-बहुसत्थो।
नामेण **बुद्धिसागर**-सूरित्ति अहेसि जयपयडो ॥१००३९॥
तेसिं पय-पंकउच्छंग-संग-संपत्त-परम-माहप्पो।
सिस्सो **पढमोजिणचंदसूरि** नामो समुप्पन्नो ॥१००४०॥
अन्नो य पुन्निमाससहरो व्व, निव्वविय-भव्व-कुमुयवणो ॥"

[गाथा १००४१ से १००४४ तक पहिले दर्शाया है]

भावार्थः—उन (**वज्रस्वामी**) की शाखा में काल-क्रम से निर्मल उज्ज्वल यशवाले, सिद्धि चाहने वाले लोगों के लिए राजा द्वारा स्थविर आत्मवर्ग की तरह (?) विशेष वंदनीय, अप्रतिम प्रशमलक्ष्मीवैभव के अखंड भण्डार, भगवान् श्रेष्ठ श्रीवर्धमानसूरिजी हुए। उनके व्यवहारनय और निश्चयनय जैसे अथवा द्रव्यस्तव और भावस्तव जैसे धर्म की परम उन्नति करने वाले दो शिष्य हुए। उनमें प्रथम **श्रीजिनेश्वरसूरि** सूर्य जैसे हुए। **जिसके उदय पाने पर अन्य तेजस्वि-मंडल की प्रभाका अपहरण हुआ था।** जिसके हर-हास और हंस जैसे उज्ज्वल गुणों के समूह को स्मरण करते हुए भव्यजन आज भी अंगों पर रोमांच को धारण करते हैं।

और दूसरे, निपुण श्रेष्ठ **व्याकरण** प्रमुख बहु शास्त्रकी रचना करने वाले **बुद्धिसागरसूरि** नाम से जगत् में प्रख्यात हुए।

उनके (दोनों के) पद-पंकज और उत्संग-संग से परम माहात्म्य पानेवाला **प्रथम शिष्य जिनचन्द्रसूरि** नामवाला उत्पन्न हुआ। और दूसरा शिष्य **अभयदेवसूरि** पूर्णिमा के चन्द्र जैसा, भव्यजनरूप कुमुदवन को विकस्वर करनेवाला हुआ। [—इसके पीछे का १००४१ से १००४४ तक गाथा का सम्बन्ध उपर आ गया है]

१००४५ गाथा में ग्रन्थकार ने सूचित किया है कि—श्रमण मधुकरों के हृदय हरनेवाली इस **आराधनामाला** (संवेगरंगशाला) को भव्यजन अपने सुख (शुभ) निमित्त विलासी जनोंकी तरह सर्व आदर से अत्यन्त सेवन करें। १००४६ से १००५४ गाथाओं में कृतज्ञताका और रचना स्थलका सूचन किया है कि—"सुगुण मुनिजनों के पद-प्रणाम से जिसका भाल पवित्र हुआ है, ऐसे सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी गोवर्धन के सुत विख्यात जज्जनाग के पुत्र जो सुप्रशस्त **तीर्थयात्रा** करने से प्रख्यात हुए, असाधारण गुणों से जिन्होंने उज्ज्वल विशाल कीर्ति उपार्जित की है। जिनबिंबोंकी **प्रतिष्ठा कराना, श्रुतलेखन** वगैरह धर्मकृत्यों द्वारा आत्मोन्नति करनेवाले, अन्य जनों के चित्त को चमत्कार करनेवाले, जिनमत-भावित बुद्धिवाले **सिद्ध** और **वीर** नामवाले श्रेष्ठियों के परम साहाय्य और आदर से यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना की है। इस आराधना की रचना से हमने जो कुछ कुशल (पुण्य) उपार्जन किया, उससे भव्यजन, **जिन-वचन का परम आराधना को प्राप्त करें**। छत्रा-वल्लिपुरी में जेज्जयके पुत्र पासनाग के भुवन में **विक्रमनृप के काल से ११२५ वर्ष** व्यतीत होने पर स्फुट प्रकट पदार्थवाली यह आराधना सिद्धि को प्राप्त हुई है। इस रचनाको, विनय-नय-प्रधान, समस्त गुणोंके स्थान, **जिनदत्त गणि** नामक शिष्य ने प्रथम पुस्तक में लिखी। संमोह को दूर करने के लिए गिनती से निश्चय करके इस ग्रन्थ में **तिरेपन गाथा से अधिक दस हजार गाथाएँ स्थापित की हैं।**

अन्त में संस्कृत के गद्य में उल्लेख है कि, श्रीजिनचन्द्र सूरि कृत, उनके शिष्य प्रसन्नचन्द्राचार्य-समभ्यर्थित, गुणचन्द्र गणि-प्रतिसंस्कृत, और जिनवल्लभगणि द्वारा संशोधित संवेगरंगशाला नामकी आराधना समाप्त हुई।

अन्तमें प्रति-पुस्तक लिखने का समय संवत् १२०७ (सं० १२०३ नहीं) और स्थान वटपद्रक में (अर्थात् इस **बड़ौदा** में समझना चाहिये।) [प्रकाशित आवृत्ति में दंड**श्रोवासरे** प्रतिपत्तौ छपा है, वहाँ **दडश्रीवोसरि**-प्रतिपत्तौ होना चाहिए, मैंने अन्यत्र दर्शाया है। [देखें, जे० भां० सूचीपत्र (गा० ओ० सि० नं० २१ पृ० २१, 'वटपद्र (बड़ौदा) का ऐतिहासिक उल्लेखो' हमारा 'ऐतिहासिक लेख संग्रह' सयाजी साहित्यमाला क्र० ३३५ वगैरह)

ग्रन्थ निर्दिष्ट नाम—वर्धमानसूरिजी की संवत् १०५५ में रचित उपदेशपद-वृत्ति, जिनेश्वरसूरिजी की जावालिपुरमें सं० १०८० में रचित अष्टकप्रकरणवृत्ति, प्रमालक्ष्म आदि, तथा बुद्धिसागरसूरिजी का सं० १०८० में रचित व्याकरण (पंचग्रन्थो), और अभयदेवसूरिजी की सं० ११२० से ११२८ में रचित **स्थानांग** वगैरह अंगोंकी वृत्तियों की प्राचीन प्रतियों का निर्देश हमने 'जेसलमेर-भण्डार-ग्रन्थसूची' (गा० ओ० सि० नं० २१) में किया है, जिज्ञासुओं को अवलोकन करना चाहिए।

पाठकों को स्मरण रहे कि, इस संवेगरंगशाला आराधना रचनेवाले श्रीजिनचंद्रसूरिजी के गुरुवर्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने गुजरात में अणहिलवाड पत्तन (पाटण) में **दुर्लभराज** राजा की सभा में चैत्यवासियों को वाद में परास्त किया था, 'साधुओं को चैत्य में वास नहीं करना चाहिये, किन्तु गृहस्थों के निर्दोष स्थान (वसति) में वास करना चाहिए'—ऐसा स्थापित किया था। उपर्युक्त निर्णय के अनुसार जिनेश्वरसूरिजी के प्रथम शिष्य जिनचन्द्रसूरिजी ने इस ग्रन्थ की रचना पूर्वोक्त गृहस्थ के भवन में ठहर कर की थी। उपर्युक्त घटना का उल्लेख जिनदत्तसूरिजी के प्रा० गणधरसार्धशतक में, तथा उनके अनेक अनुयायियों ने अन्यत्र प्रसिद्ध किया है, जो जेसलमेर भण्डार की ग्रन्थसूची (गा० ओ० सि० नं० २१), तथा अपभ्रंशकाव्यत्रयी (गा० ओ० सि० नं० ३७) के परिशिष्ट आदि के अवलोकन से ज्ञात होगा। खरतरगच्छ वालों की मान्यता यह है कि, उस वाद में विजय पाने से महाराजा ने विजेता जिनेश्वरसूरिजीको 'खरतर' शब्द कहा या बिरुद दिया। इसके बाद उनके अनुयायी खरतरगच्छ वाले पहचाने जाते हैं। **दुर्लभराज** का राज्य समय वि० सं० १०६५ से १०७८ तक प्रसिद्ध है, तो भी खरतरगच्छ की स्थापना का समय सं० १०८० माना जाता है।

संवेगरंगशालाकार इस जिनचन्द्रसूरिजी की प्रभावकताके कारण खरतरगच्छ की पट्ट-परम्परा में उनसे चौथे पट्टधर का नाम 'जिनचन्द्रसूरि' रखने की प्रथा है।

आराधना-शास्त्रकी संकलना

प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यों से प्रशंसित इस संवेगरंगशाला आराधना ग्रन्थ-अथवा आराधना शास्त्र को संकलना श्रेष्ठ कवि श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने परम्परा-प्रस्थापित सरल सुबोध **प्राकृत भाषा में** की, उचित किया है। प्रारम्भ में शिष्टाचार-परिपालन करने के लिए विस्तार से मंगल, अभिधेय, सम्बन्ध, प्रयोजनादि दर्शाया है। ऋषभादि सर्व तीर्थाधिप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर, **सिद्धों**, **गौतमादि** गणधरों, आचार्यों, उपाध्यायों और मुनियों को प्रणाम करके **सर्वज्ञकी महावाणी** को भी नमन किया है। **प्रवचन** की प्रशंसा करके, निर्यामक गुरुओं और मुनियों को भी नमस्कार किया है। सुगति-गमन की मूलपदवी **चार स्कन्धरूप** यह **आराधना** जिन्होंने प्राप्त की, उन मुनियों को वन्दन किया और गृहस्थों को अभिनन्दन दिया (गा० १४), मजबूत नाव जैसी यह **आराधना भगवती** जगत् में जयवंती रहो, जिस पर आरूढ़ होकर भव्य भविजन रौद्र भव-समुद्र को तरते हैं। वह **श्रुतदेवी** जयवती है कि, जिसके प्रसाद से मन्दमति जन भी अपने इच्छित अर्थ निस्तारणमें **समर्थ कवि** होते हैं। जिन के पद-प्रभावसे मैं सकल जन-श्लाघनीय पदवीको पाया हूँ, विबुध जनों द्वारा प्रणत उन **अपने गुरुओंको मैं प्रणिपात करता हूँ**। इस प्रकार समस्त स्तुति करने योग्य शास्त्र विषयक प्रस्तुत स्तुतिरूप गजघटाद्वारा सुभटकी तरह जिसने प्रत्यूह (विघ्न)-प्रतिपक्ष विनष्ट किया है, ऐसा मैं स्वयं **मन्दमति** होने पर भी बड़े गुण-गणसे गुरु ऐसे सुगुरुओं के चरण-प्रसादसे **भव्यजनोंके हितके लिए** कुछ कहता हूँ। (१६)

भयंकर भवाटवीमें दुर्लभ मनुष्यत्व, और सुकुलादि पाकर, भावि भद्रपनसे, भयके शेषपनसे, अत्यन्त दुर्जय दर्शन-मोहनीय के अबलपनसे, सुगुरुके उपदेशसे अथवा स्वयं कर्म-ग्रन्थिके भेदसे, भारी पर्वत-नदीसे हरण किये जाते लोगोंको नदी-तटका प्रालंब (प्रकृष्ट अवलम्बन) मिल जाय, अथवा रंकजनोंको निधान प्राप्त हो जाय, अथवा विविध व्याधि-पीड़ित जनोंको सुवैद्य मिल जाय, अथवा कुएँके भीतर गिरे हुए को समर्थ हस्तावलंब मिल जाय; इसी तरह सविशेष पुण्यप्रकर्षसे पाने योग्य, चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्षको जीतने वाले, निष्कलंक परम (श्रेष्ठ) **सर्वज्ञ-धर्म** को पाकर, अपने हितकी ही गवेषणा करनी चाहिए। वह हित ऐसा हो कि, जो अहितसे नियमसे (निश्चयसे) कहीं भी, किससे भी, और कभी भी बाधित न हो। वैसा अनुपम अत्यन्त एकान्तिक परम हित (सुख) मोक्षमें होता है, और मोक्ष कर्मोंके क्षयसे होता है, और कर्मक्षय, विशुद्ध **आराधना** आराधित करनेसे होता है। इसलिए हितार्थी जनोंको **आराधनामें** सदा यत्न करना चाहिए; क्योंकि, उपायके विरहसे उपेय (प्राप्त करने योग्य साध्य) प्राप्त नहीं हो सकता।

आराधना करनेके मनवालों को उस अर्थ को प्रकट करने वाले शास्त्रों का ज्ञान चाहिए। इसलिए 'गृहस्थों और साधुओं दोनों विषयक इस आराधना शास्त्रको मैं तुच्छ बुद्धि वाला होने पर भी कहूँगा। आराधना चाहने वाले को चाहिए कि वह मन, वचन, काया इस त्रिकरण का रोध करे।'

इस आराधना शास्त्रमें (१) **परिकर्म-विधान** (२) **परगण-संक्रमण** (३) **ममत्वव्यच्छेद** और (४) **समाधि-लाभ** नामवालेचार स्कन्ध (विभाग) हैं।

पहिले (१) **परिकर्म-विधानमें** (१) अर्ह (२) लिङ्ग, (३) शिक्षा, (४) विनय, (५) समाधि, (६) मनोऽनुशास्ति, (७) अनियत विहार, (८) राजा (९) परिणाम **साधारण द्रव्यके १० विनियोग स्थानों**, (१०) त्याग, (११) मरण-विभक्ति-१७ प्रकारके मरणों पर विचार, (१२) अधिकृत मरण, (१३) सीति (श्रेणी), (१४) भावना और (१५) संलेखना इस प्रकारके १५ द्वारों को विविध बोधक दृष्टान्तोंसे स्पष्ट रूपमें समझाया है।

दूसरे (२) **परगण-संक्रमण** स्कन्ध (विभाग) में (१) दिशा, (२) क्षामणा, (३) अनुशास्ति, (४) सुस्थित गवेषणा, (५) उपसंपदा, (६) परीक्षा, (७) प्रतिलेखना, (८) पृच्छा, (९) प्रतीक्षा, (१०)

इस प्रकार दस द्वारोंको विविध दृष्टान्तोंसे स्पष्टरूपमें समझाया है।

तीसरे (३) **ममत्वव्युच्छेद** स्कन्ध (विभाग) में (१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलोचनाविधान, (२) शय्या, (३) संस्तारक, (४) निर्यामक, (५) दर्शन, (६) हानि, (७) प्रत्याख्यान, (८) खामणा- क्षमापना, (९) क्षमा इस तरह नौ द्वारों को विविध दृष्टान्तोंसे स्पष्ट समझाया है।

चोथे (४) **समाधि-लाभ** नामक स्कन्ध (विभाग) में (१) अनुशास्ति, (२) प्रतिपत्ति, (३) सा(स्मा)रणा, (४) कवच, (५) समता, (६) ध्यान, (७) लेश्या, (८) आराधना-फल और (९) विजहना द्वारमें अनेक ज्ञातव्य विषय समझाये गये है।

—इसके (१) अनुशास्ति द्वारमें त्याग करने योग्य १८ अठारह पापस्थानकों के विषयमें, (२) त्याग करने योग्य ८ आठ प्रकारके मदस्थानोंके विषयमें, (३) त्याग करने योग्य क्रोधादि कषायोंके विषयमें, ४) त्याग करने योग्य ५ पांच प्रकारके प्रमाद के विषयमें, (५) प्रतिबन्ध-त्याग विषयमें, (६) सम्यक्त्व-स्थिरता के विषयमें, (७) अर्हन् आदि छःकी भक्तिमत्ता के विषयमें, (८) पंचनमस्कारतत्परता के विषयमें, (९) सम्यग् ज्ञानोपयोग के विषयमें, १०) पंच महाव्रत-विषयमें, (११) चतुःशरण-गमन, (१२) दुष्कृत-गर्हा, (१३) सुकृतों की अनुमोदना, (१४) अनित्य आदि १२ बारह भावना, (१५) शील-पालन, (१६) इन्द्रिय-दमन, (१७) तपमें उद्यम और १८) निःशल्यता-नियाण-निदान, माया, मिथ्यात्व-शल्य-त्याग इस प्रकार १८ द्वारों को अन्वय-व्यतिरेकसे विविध दृष्टान्तों द्वारा विवेचन करके अच्छी तरहसे समझाया गया है।

इसके प्रथम स्कन्धके परिणाम द्वार में श्रावकोंकी ११ प्रतिमाओंके अनन्तर **साधारण द्रव्यके १० विनियोग स्थान** दर्शाये हैं, विचारने-समझने योग्य हैं; अन्य **७ क्षेत्रों में द्रव्यवपन** करनेका उपदेश है। आजसे २९ वर्ष पहिले मैंने १ लेख 'सुशील जैन महिलाओनां संस्मरणो' मुंबई और मांगरोल जैन सभाके सुवर्णमहोत्सव अंकके लिए गुजरातीमें लिखा था, वह संवत् १९९८ में प्रकाशित हुआ था। और 'सयाजी साहित्यमाला' पुष्प ३३५ में हमारे 'ऐतिहासिक लेखसंग्रह में [क्र० १०, ३३१ से ३४७ में] संवत् २०१९ में प्राच्यविद्यामन्दिर द्वारा महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, बड़ौदासे प्रकाशित है। उसमें मैंने इस **संवेगरंगशाला** में से **श्रमणी** और श्रावक, **श्राविका** स्थानोंके लिए द्रव्य-विनियोग वक्तव्य दर्शाया था। साथमें कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यके स्वोपज्ञ विवरण वाले संस्कृत योगशास्त्रसे भी परामर्श सूचित किया था। इस संवेगरंगशालाकी रचना विक्रमसंवत् ११२५ में, और श्रीहेमचन्द्राचार्यका जन्म विक्रमसंवत् ११४५ में (बीस वर्ष पीछे) हुआ था, प्रसिद्ध है।

संवेगरंगशालामें परिणामद्वारमें आयुष्यपरिज्ञानके जो ११ द्वारों (१) देवता, (२) शकुन, (३) उपश्रुति, (४) छाया, (५) नाडी, (६) निमित्त, (७) ज्योतिष, (८) स्वप्न, (९) अरिष्ट, (१०) यन्त्र-प्रयोग और (११) विद्या-द्वार दर्शाये हैं। इसी तरह श्रीहेमचन्द्राचार्यने अपने संस्कृत **योगशास्त्रमें** (पांचवें प्रकाशमें) **काल-ज्ञानका** विचार विस्तारसे दर्शाया है। तुलनात्मक दृष्टिसे अभ्यास करने योग्य है।

पाटण और जेसलमेर आदिके जैन ग्रन्थभंडारों में आराधना-विषयक छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थ है, सूचीपत्रमें दर्शाये हैं। इन सबका प्राचीन आधार यह संवेगरंगशाला आराधनाशास्त्र मालूम होता है। वर्तमानमें, अन्तिम आराधना करानेके लिए सुनाया जाता आराधना प्रकीर्णक, चउसरणपयन्ना और उ० विनयविजयजी म० का पुण्य-प्रकाश स्तवन इत्यादि इस संवेगरंगशाला ग्रन्थका 'ममत्व-व्युच्छेद' 'समाधि-लाभ' विभागका संक्षेप है—ऐसा अवलोकनसे प्रतीत होगा।

दस हजारसे अधिक ५३ प्राकृत गाथाओंका सार इस संक्षिप्त लेखमें दिग्दर्शन रूप सूचित किया है। परम उपकारक इस ग्रन्थका पठन-पाठन, व्याख्यान, श्रवण, अनुवाद आदिसे प्रसारण करना अत्यन्त आवश्यक है, परमहितकारक स्वपरोपकारक है।

आशा है, चतुर्विध श्रीसंघ इस आराधना शास्त्रके प्रचारमें सब प्रकारसे प्रयत्न करके महसेन राजाकी तरह आत्महितके साथ परोपकार साधेंगे। मुमुक्षु जन आराधना रसायनसे उनसे अजरामर बने—यही शुभेच्छा।

संवत् २०२७ पोषवदि ३ गुरु
(मकर-संक्रान्ति)
बड़ी बाड़ी, रावपुरा,
बड़ौदा (गुजरात)

लालचन्द्र भगवान् गांधी
[निवृत्त 'जैनपण्डित' बड़ौदा राज्य]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम नरेश्वर और प्रथमतीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव

१ भगवान का कर्मभूमियोग्य विविध कला सिखाना

२ ब्राह्मी सुन्दरी को ब्राह्मी लिपी आदि सिखाना

३ भरत चक्रवर्ती की आयुधशाला में चक्र का प्राकट्य

४ समवशरण में चतुर्विध संघ स्थापन बारह परिषद् में धर्म देशना

५ कैलाश पर्वत पर निर्वाण, सिद्धशिला पर विराजमान प्रभु

चित्रकार—इन्द्र दुगड़

जैन भवन के सौजन्य से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु साध्वी सहित भक्त श्रावक संघ को आशीर्वाद देते हुए युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org